ISSN No : 2581-6306
website : http://shisrrj.com
Impact Factor : 5.239

Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal

Certificate of Publication

Ref : SHISRRJ/Certificate/Volume 3/Issue 6/393

24-Dec-2020

This is to certify that the research paper entitled

अविश्वास की शेष गंध : 'मलबे का मालिक'

डॉ. राम उदय कुमार
एसोसिएट प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग, एस० डी० एस० कॉलेज, कलेर, अरवल, बिहार, भारत।

After review is found suitable and has been published in the Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal(SHISRRJ), Volume 3, Issue 6, November-December 2020. [Page No : 91-96]

This Paper can be downloaded from the following SHISRRJ website link

http://shisrrj.com/SHISRRJ203634

SHISRRJ Team wishes all the best for bright future

Editor in Chief
SHISRRJ

Associate Editor
SHISRRJ

Peer Reviewed and Refereed International Journal

Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 SHISRRJ | Volume 3 | Issue 6 | ISSN : 2581- 6306

अविश्वास की शेष गंध : 'मलबे का मालिक'

डॉ. राम उदय कुमार
एसोसिएट प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग,
एस० डी० एस० कॉलेज, कलेर, अरवल, बिहार,भारत।

Article Info
Volume 3, Issue 6
Page Number: 91-96
Publication Issue :
November-December-2020
Article History
Accepted : 10 Dec 2020
Published : 24 Dec 2020

सारांश – आदमी अपने स्वार्थ के लिए दूसरों की भावना की क़द्र नहीं करता। आस -पास के लोगों के आड़े वक़्त वह अपनी कायरता कारण काम नहीं आ पाता। अपने घोसलों में घुस सुरक्षा खोजे जा रहा है और दूसरो की चीज़ों पर नज़र भी गड़ी है। स्वार्थ के इस निचाट अंधेरे में पशु की गुर्राहट का प्रतिवाद सचमुच बड़ा मानीख़ेज है।

मुख्य शब्द – मोहन राकेश , अविश्वास , शेष गंध, मलबे का मालिक

मोहन राकेश की यह कहानी विभाजन के दौर की पीड़ा की साक्षी है। इस कहानी में आपसी अविश्वास की शेष गंध तो है , लोगों के स्वार्थ से जुड़ा बेमुख्वत आर्थिक पहलू भी मौजूद है। कहानी शुरू होती है इस सूचना से कि 'साढ़े सात साल के बाद वे लोग लाहौर से अमृतसर आए थे।' वे यहीं से विभाजन की मारकाट में सब छोड़, बस प्राण बचा के भाग गए थे। पर साढ़े सात साल ही क्यों ? सात या आठ साल क्यों नहीं ? शायद 1947 का वह दौर भारत के लिए साढ़ेसाती या शनिग्रह के प्रकोप का दौर था। क्या वह दौर बीत गया? जो आये हैं हॉकी मैच देखने के बहाने, वे अपनी अमृतसर की यादों से खिंचे चले आये हैं। आकर जैसे उस पुराने दौर की टीस को तत्काल भुला भी बैठे हैं। नहीं! मिसरी बाजार में मिसरी की कमी, नुक्कड़ की सुक्खी भटियारिन की जगह बैठा पान वाला और नमक मंडी की नमकीन ललाइनें उनकी दिलचस्पी के विषय न होतीं। भले कुछ लोग उन्हें देख कतरा कर निकले भी पर ज्यादातर बगलगीर भी हुए और पूछा – "आजकल लाहौर का क्या नाम है ? अनारकली में पहले जितनी रौनक होती है या नहीं? सुना है, शहालमी गेट का बाजार पूरा नया बना है। कहते है पाकिस्तान में अब बुर्का एकदम उड़ गया है ?"[i] इन आत्मीय सवालों पर कहानीकार की टिप्पणी है – "लगता था लाहौर एक शहर

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

नहीं हजारों लोगो का सगा- संबंधी है, जिसके हाल जानने के लिए वे लोग उत्सुक हैं। लाहौर से आये लोग उस दिन शहर के मेहमान थे, जिनसे मिलकर और बातें करके लोगों को बहुत ख़ुशी हो रही थी।"

कहानी का ये प्रारम्भ 'उसने कहा था' के प्रारम्भ की याद दिला देता है। बाजार के वर्णन और आते-जाते लोगो की जिंदादिली यहाँ भी है। पर एक अर्थ है वहां, लहना और बच्ची के सरल सहज मनोभाव की झंकृति उस जिंदादिल परिवेश को एक धुला-धुला सा अहसास देती है, जैसे सुबह की ताजगी - वह यहाँ नहीं है। यहाँ विभाजन की त्रासदी की कालिमा उस जिन्दादिली पर जैसे अँधेरे की एक चादर तान देती है। कहानी आगे बढ़ती है और यह अंधेरा उभरने लगता है। बाजार बासाँ के उजड़े हुए बाजार से जहाँ ज्यादातर निचले तबके के मुसलमान रहते थे। विभाजन के दंगे में इस शहर के जल जाने का खतरा पैदा हो गया था। किसी तरह वह आग काबू में आ गयी थी , पर उसने मुसलमानों के एक- एक घर के साथ हिन्दुओं के भी चार-चार, छह -छह घर जल के रख हो गए थे। जगह-जगह मलबे के ढेर अभी मौजूद थे।

आग किसी को भी नहीं बख़्शती चाहे वो हिन्दू हो या कि मुसलमान या किसी अन्य धर्म का, उसका धर्म तो जलाना ही होता है। सांप्रदायिकता की आग में दोनों तरफ के यानि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के हिन्दू - मुसलमानों पर समान रूप से अपने धर्म का निर्वाह किया था। हिंदुस्तान से बेघर परिवार और संपत्ति से महरूम मुसलमान भगा दिए गए थे और पाकिस्तान से हिन्दू और सिक्ख।

अमृतसर के इस बाजार बासाँ में एक दर्जी गनी मियां आया है जो लोगों के कपड़े सिलता था, वह दंगे से पूर्व पाकिस्तान चला गया था। उसका बेटा चिरागदीन अपने छ: महीने पुराने घर को छोड़कर न जा सका। कितने प्रेम और ललक से उसने घर बनवाया होगा ! बाल बच्चों के साथ वहीं जमा रहा। घर से इस प्रेम ने एक और तर्क पैदा किया, जो उसे यहाँ रोक सका। उसने अपने मोहल्ले वालों पर भरोसा किया। खासकर रक्खे पहलवान पर। गनी मियां जब रक्खे को देखता है तो अपने जले, जमींदोज घर और पूरे परिवार के मर जाने के दुःख में जैसे उसे एक तिनके का सहारा मिल जाता है - "भोले कबूतरी ने यह नहीं सोचा कि गली में खतरा न हो पर बाहर से तो खतरा आ सकता है। रक्खे उसे तेरा बहुत भरोसा था। कहता था कि रक्खे के रहते मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मगर जब जान पर बन आई तो रक्खे के रोके भी नहीं रुकी।"[ii]

हम थोड़ा पीछे चलें जब गनी मियाँ कहानी में प्रवेश करते हैं। नए आबाद हुए घरों और बीच - बीच में जले घरों के मलबों ने गनी मियाँ को परेशान किया। उनकी बूढ़ी आँखों ने जैसे अपनी ही गली को पहचानने से इन्कार कर दिया। कुछ औरतों के झगड़े ने उस पहचान को जैसे ताज़ा करना शुरू किया - 'सब कुछ बदल गया मगर बोलियाँ नहीं बदलीं।' बिसरी हुयी यह पहचान जब उभरने लगी तो स्वतः उसमें अपनापन पनपा। रोते हुए आते एक बच्चे को उसने बुलाया - "इधर आ, बेटे, आ इधर। देख, तुझे चिज्जी देंगे।"[iii] पर इसका परिणाम यह हुआ कि मोहल्ले में हल्ला पड़ गया। बच्चों को घर में बुलाया जाने लगा कि कहीं पाकिस्तान से आया मुसल्ला बच्चों को चुरा न ले। अपनापा, जो उभर रहा था उसे एक झटका लगा। बच्चों को माँ ने अन्दर खींच लिया और गनी मियाँ ने पैसा वापस जेब में रख लिया। साढ़ेसाती का असर बड़ा गहरा है।

उभरता हुआ यह अपनापा जो फिर डूब रहा था उसे मनोरी के रूप में एक सहारा मिला। बीच के साढ़े सात सालो में वह बच्चा अब नवयुवक बन चुका था चाबी का गुच्छा घुमाता वह मस्ती में गुजर रहा था। गनी मियाँ को वह पहचान नहीं पाया। तब गनी मियाँ ने उसे नाम लेकर पुकारा। उसे बताया कि वह चिरागदीन का बाप है जो उनके कपड़े सिलता था। मनोरी उसे उसके घर के पास ले गया जो अब मलबे का ढेर था, पूरे मोहल्ले में चेहमेगोइयाँ शुरू हो गयी कि अब गनी मियाँ को वास्तविकता का पता चल जाएगा।

यहीं कहानी में रक्खे पहलवान नमूदार होता है जो मोहल्ले का गुंडा है। उसने चिरागदीन और उसके पूरे परिवार को मार डाला था। इसकी नज़र उसके घर पर थी पर उसी मोहल्ले के किसी व्यक्ति ने घर को आग लगा दी। रक्खे की साध पूरी न हुयी। पर अब वह उस जगह और उस मलबे को अपनी मिल्कियत समझता है। किसी को वहाँ फटकने तक नहीं देता, लोगो में इसे लेकर गहरे एतराज़ का भाव है कि काश वह जगह उनकी होती। पर रक्खे का डर सबको था। लोग गनी मियाँ को देख सब खुश हो रहे थे कि अब भेद खुलेगा और हो सकता है रक्खे को वह जगह छोड़नी पड़ जाए। पर गनीमियाँ कुछ न जान सके। रक्खे को देख वही पुराना अपनापन सिर उठाता है, वे सहज ही अपना भरोसा उसके सामने प्रकट कर देते हैं। सब कुछ खो चुके गनी मियाँ रक्खे में जैसे कुछ पा लेना चाहते हैं। पुरानी स्मृतियो में जो कुछ अपनापा था उसकी गंध ही सही ! वह अपनापन, वह भरोसा जो उनकी जिजीविषा का हिस्सा रहा था। और यही अपनापा और भरोसा रक्खे के अस्तित्व को जड़ बनाये दे रहा था। अपनापा और भरोसा इंसानी जज़्बे हैं। रक्खे का अपराधी मन इन्हें सम्भाल नहीं पा रहा था पर अपने अपराध को वह प्रकट भी नहीं कर सकता था। इस गहरे द्वन्द्व में उसकी अंतरात्मा उद्विग्न थी। उसका समूचा अस्तित्व जड़ हुआ जाता था। मुँह सूखने लगा था। उसे ईश्वर याद आया - " हे प्रभु सच्चिआ ! तू ही है, तू ही है, तू ही है।"[iv]

जाकी रही भावना जैसी। गनी मियाँ को रक्खे की इस बेजान हालत पर रहम आ गया। ठीक भी था। इन्हें सच का पता कहाँ था, वे अरसे बाद अपनों के अपनापे में अपने गम के लिए सहारा पा रहे थे। रक्खे ने प्रभु की गुहार लगायी, तो उसने उन्हें एक दर्दमंद इंसान नज़र आया। सहानुभूति पाकर (भ्रमवश ही सही) गनी मियाँ गल गए और रक्खे को ही सांत्वना दे चले - "जो होना था, हो गया रक्खिया! उसे अब कोई लौटा थोड़े ही सकता है ! खुदा नेक की नेकी बनाये रखे और बद की बदी माफ़ करे ! मैंने आकर तुम लोगों को देख लिया, सो समझूंगा कि चिराग को देख लिया। अल्लाह तुम्हे सेहतमंद रखे।"[v] प्रभु की गुहार के सापेक्ष अल्लाह से की गयी यह दुआ परायेपन की उस चट्टान को भेद कर निकली है जहाँ निहित स्वार्थ आपराधिक कृत्यों को अंजाम देते हैं।

पर क्या होता अगर गनीमियाँ को सब कुछ पता चल जाता जैसा कि मोहल्ले वाले चाहते थे। वैसे यह न हुआ और मोहल्ले वालों को उनकी जलन की खुराक न मिल सकी। कहानीकार ने विरोधी मनोभावों में जी रहे दो व्यक्तियों की मनोदशा को बड़े मार्मिक ढंग से कम से कम में रख दिया और काफी कुछ काव्यात्मक ऊँचाई, इस प्रसंग को दिया है- रक्खे में वह ओज, वह धौंस नहीं रही। एक कुत्ता उन मलबों के बीच बैठा था, पर उसे भी रक्खे ने बड़े अनमने ढंग से भगाया और न भागने पर छोड़ दिया। लच्छे से रोज की तरह 'सट्टे के गुर या सेहत के नुस्खे' पर बात नहीं कर पाया अपितु उसे पंद्रह साल पहले अपनी वैष्णो देवी की यात्रा का विवरण सुनाता रहा। गनीमियाँ के सहज इंसानी बर्ताव ने उसके अन्दर के इंसान को भी सजग कर दिया और वह अपराधबोध में गहरे डूबता चला गया। गनीमियाँ की उपस्थिति और उसका सद्भाव रक्खे को अपराधबोध के बीच जैसे निःशक्त बना देता है। कुत्ते को अनमने ढंग से भगाकर वह कुँए की सिल पर जाकर लेट गया जैसे अब उसमें बैठे रहने की भी ताब न रही।

गनीमियाँ चले गए। कई लोग गुजरे और सबने रक्खे से यही प्रश्न किया – "रक़्खे शाह, सुना है, आज गनी पाकिस्तान से आया था।"

"हाँ, आया था", रक्खे ने हर बार एक ही उत्तर दिया।

"फिर ?"

"फिर कुछ नहीं। चला गया।"

रक्खे को बोलने में भी जैसे परेशानी हो रही है। कहानी क़ी अंतिम पंक्ति है - "काफी देर भौंकने के बाद जब उसे गली में कोई प्राणी चलता - फिरता नज़र नहीं आया, तो वह एक बार कान झटककर मलबे पर लौट गया और वहाँ कोने में बैठकर गुर्राने लगा।"[vi] सारे लोग रक्खे से पूछकर चले गए। मुहल्ले में कोई नहीं था जो रक्खे की सच्चाई को गनीमियाँ के सामने कह सकता है। सबको बस इसी का एतराज़ था कि उस जगह को रक्खे ने ही क्यों हथिया रखा है ? गनीमियाँ से किसी को सहानुभूति न थी, रक्खे से टकराने की भी किसी में हिम्मत न थी। रात होती गयी, गली सुनसान हो चली, लोग अपने घरो में कैद हो रहे हैं। यानि बात आई - गई हो गयी। पर कुत्ता कोने में बैठा गुर्राता रहा, जैसे इंसानी जज्बे के गहराते सन्नाटे और अंधकार के बीच प्रतिवाद का स्वर हो।

तो भारतीय इतिहास के उस साढ़े साती दौर की असली वजह आज भी भारतीय लोकतंत्र पर तारी है। आदमी अपने स्वार्थ के लिए दूसरों की भावना की क़द्र नहीं करता। आस -पास के लोगों के आड़े वक़्त वह अपनी कायरता कारण काम नहीं आ पाता। अपने घोसलों में घुस सुरक्षा खोजे जा रहा है और दूसरो की चीज़ों पर नज़र भी गड़ी है। स्वार्थ के इस निचाट अंधेरे में पशु की गुर्राहट का प्रतिवाद सचमुच बड़ा मानीख़ेज है। आदमी जानवर से भी गया बीता है, क्योंकि उसका घर है। केदारनाथ सिंह की यह कविता यहाँ बड़ी मौज़ूँ है –

"बिजली चमकी, पानी गिरने का डर है
वे क्यों भागे जाते हैं जिनके घर हैं।"[vii]

असल में भागते वही है, जिनके घर हैं। यह घर व्यक्ति में डर एवं असुरक्षा का भाव पैदा करता है और आदमी साहस खो बैठता है। उसमे प्रतिरोध की क्षमता जाती रहती है और कुण्ठाओं का शिकार होता वह निपट पशु होता जाता है - नितांत अपने में सीमित। विभाजन की त्रासदी पर ही आधारित अज्ञेय की कहानी शरणदाता का वह वाक्य यहाँ प्रासंगिक है - "भलाई की साहसहीनता ही बड़ी बुराई है। घने बादल से रात नहीं होती। सूरज के निस्तेज हो जाने से होती है।"[viii] इसलिए कबीर ने कहा था - जो घर जारे आपना चले हमारे साथ !

भारतीय इतिहास ने आंदोलनों के कई दौर देखे है। उस जान - उभार में यह घर जला डालने का हौसला भी जोर मारता रहा है। पर अभी तो...

संदर्भ सूची :

[i] मोहन राकेश, *मलबे का मालिक,* नये बादल (कहानी संग्रह), भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1957, पृ. 45

[ii] मोहन राकेश, वही, पृ. 54

[iii] वही, पृ. 46

[iv] मोहन राकेश, वही, पृ. 54

[v] मोहन राकेश, वही, पृ. 55

[vi] वही, पृ. 57

[vii] केदारनाथ सिंह, *शहर में रात,* प्रतिनिधि कवितायें, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2013

[viii] अज्ञेय, *शरणदाता*